ISSN 2277 - 7865

# तित्थयर

*श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका*

वर्ष - ३८ अंक - ०८ नवम्बर २०१४

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिये
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com
Website : www.jainbhawan.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

**संपादन**
**डॉ. लता बोथरा**
पी-एच.डी., डी.लिट्

**Editorial Board :**

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10. Smt. Pushpa Boyd

## *अनुक्रमणिका*


| क्र. सं. | लेख | लेखक | पृ. सं. |
|---|---|---|---|
| १. | नारी की मातृत्त्व शक्ति | साध्वी राजरश्मि | ३२१ |
| २. | यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान | डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी | ३३१ |
| ३. | भांडासर जैन मंदिर | ललित कुमार नाहटा | ३३७ |
| ४. | सोने के कंगन | श्री केवल मुनि | ३४१ |


ISSN 2277 - 7865

**कवरपृष्ठ :** जैन मुनियों की मूर्तियाँ हाथ में ओघा लिए हुए
बौद्धों में ओघा का प्रचलन नहीं है।
(Fei lai feng caves China)

**Composed by:**
**Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007**

# नारी की मातृत्त्व शक्ति

साध्वी राजरश्मिजी

करुणा की साक्षात् मूर्ति, सहनशीलता की सजीव प्रतिमा, ममता की प्रकृति, क्षमा की शक्ति-पुञ्ज, सरलता के भूषण और सहनशीलता के आभूषण से सुसज्जित पवित्र स्नेहधारा का नाम है नारी। विश्व के निर्माण का यदि सबसे बड़ा महाविद्यालय है तो वह है माँ, जिसके पावन सान्निध्य में बच्चा पलता है, पुष्पित-पल्लवित होता है। यदि नारी चारित्रवान व सद्गुणों से सम्पन्न है तो संतान प्रतिभावान बनकर समाज व राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी बनेगी। पुराणादि में बताया गया है कि बच्चा गर्भावस्था में ही माता के रहन-सहन, आचार-विचार, गुण-दोष, खान-पान आदि के प्रभाव को अपनाया करता है। मनुस्मृति में कहा है कि हजार पिताओं से भी अधिक माँ का गौरव होता है। संत विनोबाभावे ने कहा– 'बच्चे को शुरू के साल दो साल में जितना ज्ञान मिलता है, उतना ज्ञान आगे की सारी जिन्दगी में भी नहीं मिल सकता। माता ही सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठ गुरु है।' नारी नवयुग की चिनगारी है। स्वतन्त्रता सेनानी श्री कन्हैयालालजी 'अनन्त' के अनुसार–

जागृत होता वही राष्ट्र, जागृत है जिसकी नारी।
उठती महक उसी के दम पर बच्चों की फुलवारी।।

महाभारत में अभिमन्यु के लिए बताया गया है कि उसने माता के गर्भ में रहते हुए पिता के द्वारा माँ को बताये जाने पर चक्रव्यूह तोड़ने का ज्ञान सीख लिया था। इससे सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष रूप से भी माता-पिता के मनोभावों से ही बच्चे के मनोभावों का निर्माण और विकास होता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक महान् पुरुषों का जीवन-निर्माण उनकी माताओं द्वारा ही किया गया। रानी कौशल्या के



हृदय की उदारता, वत्सलता, दयालुता रामचन्द्रजी के जीवन में भरी गई। जीजाबाई, जो हिन्दू जाति के गौरव व प्रतिष्ठा के लिए मर-मिटने को हमेशा तत्पर रहती थी, अपने बेटे शिवाजी के जीवन निर्माण में साधन बनी। वीर और स्वाभिमानी शकुन्तला का पुत्र भरत अपनी माँ से शिक्षा पाकर निःशंक शेर के मुंह के दाँत गिनने का शौकीन हुआ। महात्मा बुद्ध, वर्धमान, ईसा आदि की चारित्रिक महानता एवं आत्मिक पौरुष उनकी माताओं की शिक्षा एवं सद्प्रेरणा का परिणाम ही था।

जार्ज वाशिंगटन ने कहा है— 'मेरी विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, पद एवं सम्मान इन सबका मूल कारण मेरी आदरणीय जननी ही है।' मुसोलिनी लिखते हैं— मेरी माँ जितनी शांत थी उतनी ही कोमल और तेजस्विनी थी। मुझे सदा भय रहा करता था कि मेरी माँ मुझसे अप्रसन्न न हो। उन्होंने सदा इसका ध्यान रखा कि उनकी संतान निर्भीक, साहसी, दृढ़ और निश्चयशील बनें। इससे यह साबित होता है कि मुसोलिनी का अपरिमित तेज भरा पौरुष उनकी माता की ही देन था।

**माता का दायित्त्व :**

उज्ज्वल चरित्र वाली माता ही बच्चे को महापुरुष बनाने में समर्थ होती है। जिन गुणों को माँ शुरु से बच्चे के जीवन में उतारना चाहती है, माँ स्वयं उन सबका आचरण करे क्योंकि झूठ बोलकर माँ अपने बच्चे को सत्य बोलने का पाठ नहीं पढ़ा सकती। स्वयं क्रोध करके बच्चे को शांत रहने की सीख नहीं दी जा सकती।

बच्चों के बचपन में ही संस्कार सुधारने चाहिए। बालक का जीवन अनुकरण से प्रारंभ होता है। वह बोलते-चलते, खाते-पीते और कोई भी काम करते घर के सदस्यों का विशेषतया माता का ही अनुकरण करता है। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर ने फरमाया है 'असंख्यं जीवियं मा पमायए' अर्थात् यह जीवन असंस्कृत है, इसलिए प्रमाद मत करें। असंस्कृत जीवन को संस्कृत बनाने के लिए घर ही उपयुक्त पाठशाला है। माता-पिता ही शिक्षक और संस्कारित होंगे तो सच्चे शिक्षक साबित हो सकते हैं।

जहाँ माता क्षण-क्षण गालियाँ बड़बड़ाती हो, पिता माता पर चिढ़ता रहता हो और अशिष्ट व्यवहार करता हो, वहाँ बालक से क्या आशा की जा सकती है? हजार यत्न करो बालक को डराओ, धमकाओ, मारो-पीटो फिर भी वह सुसंस्कारी या विनयी नहीं बन सकता। 'माँ सौ शिक्षकों का काम देती है' यह कथन सत्य एवं आदरणीय तथा आचरणीय है।

नारी का जीवन ममता से भरा है। यह मातृत्व, त्याग एवं स्नेह की मूर्ति है। वह जीवन पर्यन्त अपने कर्त्तव्यों का पालन करती हुई, सृष्टि का नवनिर्माण कर सकती है। नारी एक सृजनकार है जो घर का आधार है। ईश्वर का एक प्रकार है नारी।

**मातृत्व शक्ति का सन्तति सुधार में उपयोग :**

कभी-कभी कुसंगति के प्रभाव से या सद्संस्कारों के अभाव में बच्चे में दुर्गुण प्रवेश कर जाते है तो सबसे पहले माँ को उसके प्रति आवेश आ जाता हैं और आवेश आते ही मुख से गालियों की वर्षा आरम्भ हो जाती है, लातें-घूँसे आदि से कोमल अनजान बालक पर माँ हमले किया करती है। कभी-कभी तो इसका परिणाम इतना घातक होता है कि आजीवन माता-पिता को पछताना पड़ता है। इससे बालक का जीवन बर्बाद हो जाता है।

विवेकशील माता भय की प्रणाली का उपयोग नहीं करती। वह आवेश पर अंकुश रखकर उसे सुधारने के लिए घर का माहौल सुन्दर बनाने की कोशिश करती है। आजकल हर माता को सद्धर्म की उन्नत भावना की तालीम लेने की आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक जीवन में देखा जाता है कि आज के माता-पिता के मन क्लेश के रंग मे रंगे हुए हैं, सदैव काम-वासना से ग्रसित रहते हैं। बात-बात में अश्लील अभद्र व्यवहार करने में भी संकोच नहीं करते। जहाँ यह स्थिति है वहाँ मातृशक्ति का उपयोग संस्कृति के संरक्षण में नहीं हो पाता।

जीवन-निर्माण का अर्थ है– संस्कार सम्पन्न बनाना और बालक की विविध शक्तियों का विकास करना। शक्तियों का विकास हो जाने



पर वह सन्मार्ग में लगे सत्कार्य में उसका उपयोग हो, यह सावधानी रखना माता का पूर्ण कर्त्तव्य है।

नारी जग-जननी की अवतार है। स्त्रियों की कुक्षी से ही महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए। पुरुष समाज पर स्त्री समाज का बड़ा भारी उपकार है उस उपकार को भूल जाना और उसके प्रति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है। नर एवं नारी समाज के अंग हैं दोनों स्वस्थ, बलवान एवं अच्छी सोच रखने वाले होने चाहिए। माता का स्थान बच्चे के जीवन निर्माण में महत्त्वपूर्ण है। बच्चे के प्रति माँ का जो आकर्षण ममत्व है, वहीं बच्चे को उचित रूप में जीवन पथ पर अग्रसर होने का प्रयत्न किया करता है।

**मातृशक्ति स्नेह का निर्झर झरना :**

माता के हृदय से बहने वाला वात्सल्य का अखण्ड झरना कभी सूख नहीं सकता। यह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। माता का प्रेम सदैव अतृप्त रहने के लिए है और उसकी अतृप्ति में ही शायद जगत् की स्थिति है। जिस दिन मातृहृदय सन्तान प्रेम से तृप्त हो जायेगा, उस दिन जगत् में प्रलय हो जायेगा। माता सन्तान के प्रति वात्सल्य भाव से प्रेरित उसकी रक्षा करने के लिए शक्ति न होते हुए भी दुःसाहस कर बैठती है। आचार्य मानतुंग द्वारा रचित भक्तामर स्तोत्र की गाथा-5 में लिखा है—

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश।
कर्तुं-स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृतः।
प्रीत्याऽऽतम - वीर्यमविचार्य मृगीमृगेन्द्रम्।
नाभ्येति कि निज-शिशो परिपाल नार्थम्।

अर्थात् भक्ति के वशीभूत हुआ भक्त शक्ति के उपरान्त प्रभु का गुणगान गाता है जैसे- हिरणी अपने शावक की रक्षा करने के लिए सिंह से भी सामना करने में नहीं हिचकिचाती। अफगानिस्तान का बादशाह सुबुक्तगीन गुलाम खानदान में पैदा हुआ था। एक बार ईरान से अफगानिस्तान आते हुए उनका घोड़ा रास्ते में मर गया। सामान जो

उठा सकते थे उठाया बाकी वहीं छोड़ दिया। भूख लगने पर आसपास जंगल में नजर दौड़ाई। एक हरिणी का शावक पकड़ा उसको पकाकर खाना चाहता है। तेज धारदार छुरी से उसपर वार करने लगा तो हरिणी की तरफ नजर गई जो पास में ही झाड़ी में छुपी थी। धीरे-धीरे वह करीब आती है। सुबुक्तदीन ने उस हरिणी के चेहरे पर विषाद की गहरी रेखाएं देखी, उसके नेत्रों से बहते हुए आँसु देखकर बादशाह ने सोचा– मेरे लिए तो यह हरिणी का बच्चा दाल-रोटी के बराबर है लेकिन इसकी माँ के हृदय में इसके प्रति कितना गहरा प्रेम है। अब मैं चाहे भूखा मर जाऊंगा पर अपनी माँ के इस दुलारे को हर्गिज नहीं खाऊंगा। बच्चे को छोड़ दिया तो वह अपनी मां से मिलकर उछलने लगा। यह दृश्य देखकर बादशाह को विश्वास हो गया कि माँ के प्रेम से बढ़कर विश्व में कोई दूसरी चीज नहीं।

मातृ प्रेम संसार की सर्वोत्तम कृति है, विभूति है, संसार का अमृत है। मातृ-हृदय की दुनियां में सभी ने प्रशंसा की है आज के वैज्ञानिकों का भी यही कहना है कि माता में हृदय का बल होता है। इसी बल के कारण वह संतान के लिए कष्ट उठा सकती है। माता अपने हृदय बल से संतान का पालन करती है लेकिन आजकल युवक मातृशक्ति को भूलकर पत्नी के गुलाम बनकर माता की उपेक्षा करते हैं। यह कृतघ्नता नहीं तो क्या हैं?

माता अपने पुत्र को कभी थप्पड़ भी मार देती है पर उसका हृदय तो पुत्र के कल्याण की कामना से सदैव परिपूर्ण ही रहता है इसी से वह फिर उसे पुचकारती है, दुलारती है। बालक की एकान्त कल्याण कामना निरन्तर विद्यामान रहती है।

**मातृ-भक्ति से मातृत्व शक्ति की पूजा :**

जीवन में माता का स्थान अनोखा होता है माता पुत्र को जन्म देती है। माता से ही पुत्र को शरीर मिलता है। संतान पर माता का असीम ऋण है। उस ऋण को चुकाना कठिन है मगर क्या आजकल संतान यह समझती है? आज तो कोई-कोई सपूत ऐसे होते हैं कि नीति



की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं। औरतों की बातों में आकर माता का अपमान कर बैठते हैं। पुराना आदर्श ऐसा नहीं था। राम सोचा करते थे कि माँ अगर आशीर्वाद देगी कि जाओ, जंगल में रहो तो मैं जंगल में भी आनन्द से रहूँगा।

नैपोलियन के लिए कहा जाता है कि वह माता का बड़ा भक्त था। वह कहा करते थे कि तराजू के एक पलड़े में सारे संसार का प्रेम रखूं और दूसरे पलड़े में मातृ प्रेम रखूं तो मेरा मातृ-प्रेम ही भारी ठहरेगा। वर्धमान जब माता त्रिशला के गर्भ में थे तो उन्होंने सोचा मेरे हिलने-डुलने से माता को तकलीफ होती है इसलिए निश्चेष्ट हो गये लेकिन माता का ऐसे में उदास होना, अनहोनी आशंका से ग्रसित होना, गर्भ नष्ट होने की शंका से व्याकुल होता जानकर पुनः हलन-चलन करने लगे। माता के हर्ष का कोई ठिकाना नहीं था। वर्धमान ने संकल्प कर लिया कि जब तक माता पिता जीवित रहेंगे तब तक दीक्षा नहीं लूँगा क्योंकि वह भावी तीर्थंकर का जीव था और उसी भव में मोक्ष पधारने वाले थे।

पुत्र सभी स्त्रियां चाहती हैं, पर पुत्र कैसा होना चाहिए, यह बात कोई विरली ही समझती है। कहा गया है—

जननी जने को भक्तजन या दाता या शूर।
नहीं तो जननी बांझ रहे काहे गंवावे नूर।।

अर्थात् माँ, अगर पुत्र पैदा करना है तो वह भक्त हो या दानी हो या शूरवीर हो। नहीं तो बांझ भले ही रहना पर अपनी मातृत्व शक्ति को कलंकित नहीं करना। रामायण में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी तीनों ने आदर्श माता की मिसाल कायम की और तीनों माताओं के चारों पुत्र मातृ-भक्ति करते हुए भक्ति की शक्ति के द्वारा विकट परिस्थितियों में सहनशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, मानवता का आदर्श हुए और आज तक जन-जन के हृदय में अपना नाम अंकित कर गये। सेवा करने वाला पुत्र वास्तव में सच्चा पुत्र और भाग्यशाली है।

**परम उपकारी मातृ-शक्ति :**

मां बच्चे को जन्म देती है, नौ महीने उदर में रखे हुए अनेकों कष्टों का सामना करती हैं। जन्म लेने के बाद तो उसके संकटों की कोई गिनती नहीं रहती। फिर भी वह हंसती-हंसती पुत्र का मुंह देखकर सब कुछ सहन करती है। माता का पुत्र पर असीम उपकार है। बहुत से लोग माता-पिता के महान उपकारों को विस्मरण करके पीछे से आई हुई स्त्री के मनोहारी हाव-भाव से मुग्ध होकर उसकी सम्मोहिनी माया जाल में फंसकर माता-पिता के शत्रु बन जाते हैं और स्त्री की उंगली के इशारे पर नाचते हैं। माता-पिता को इतनी पीड़ा देते हैं कि हृदय दहल जाता है।

जिस माता ने अपने यौवन के सौन्दर्य की परवाह न करके अपने हृदय के रस से दूध से बालक के प्राणों की रक्षा की, जिसके उदर में रहने पर उसकी रक्षा के लिए संयम से रही, प्रसव के पश्चात् सब प्रकार की घृणा को ममता के ऊपर न्यौछावर कर दिया, जिसकी बदौलत पुत्र पत्नी पाने योग्य बना उसी माता की वृद्धावस्था में जब दयनीय दशा होती है और वह भी अपने पुत्र के हाथों तब उस पूत को क्या कहा जा सकता है लेकिन फिर भी कहा जाता है माता कुमाता नहीं हो सकती पूत भले ही कपूत हो जाये।

जैन इतिहास में वर्णन आया है। इन्द्र स्वयं तीर्थंकर की माता प्रणाम करते हुए कहते है– 'हे रत्नकुक्षी-धारिणी! हे जगत् विख्याता! हे महामहिमा-मंडित माता! आप धन्य हैं। आपने धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और भव सागर से पार उतारने वाले, संसार में सुख एवं शांति की स्थापना करने वाले त्रिलोकीनाथ को जन्म दिया। अम्बे! आप कृतपुण्या हैं और सुलक्षणा हैं। आपने जगत् को पावन किया है।' इससे स्पष्ट है देवों का राजा इन्द्र मनुष्यों में से संसार त्यागियों को छोड़कर अगर किसी को नमस्कार करता है, तो तीर्थंकर भगवान् की माता को ही और किसी के सामने इन्द्र का मस्तक नहीं झुकता। इसका कारण यह है कि भगवान् महावीर माता के ही निकट है। भगवान् को बड़ा



बताना और भगवान् जिनके प्रति अति सन्निकट है, उन्हें न बताना, यह उनका अपमान है।

ठाणांग सूत्र में वर्णन आया है कि गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा, "भगवन्, अगर पुत्र माता-पिता को नहलाये वस्त्राभूषण पहनावे, भोजने आदि सब सुख देवें और उन्हें कन्धे पर उठाकर फिरे तो क्या वह माता-पिता के ऋण से उऋण हो सकता है? भगवान् ने उत्तर दिया—"

नायमट्ठे समट्ठे।

अर्थात् ऐसा होना संभव नहीं। इतना करके भी माता के उपकार का बदला नहीं चुक सकता। वेद में माता-पिता के सम्बन्ध में कहा गया है–मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

कहने का भाव यही है कि मातृत्व को समझने के लिए सर्वप्रथम माता-पिता के प्रति श्रद्धा की भावना होनी चाहिए। भले ही पुत्र कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो, बुद्धि वैभव कितना ही विशाल क्यों न हो? फिर भी माता के समक्ष विनम्रता धारण करना पुत्र का कर्त्तव्य है। अगर पुत्र विनीत है तो उसके सद्गुणों का विकास ही होगा। प्रतिष्ठा में वृद्धि ही होगी, जो अविनित है, जो माता-पिता की अवज्ञा करता है, जो माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध चलता है, वह कुल के लिए अंगार हैं।

**संस्कारों के आरोपण में मातृ-शक्ति :**

अविनय, अशिक्षा आदि दुर्गुणों को दूर करने का प्रयत्न सर्वप्रथम बाल्यवस्था में ही माता के द्वारा किया जाना चाहिए। माता अगर चाहे तो अपने सद्गुणों द्वारा बच्चों को गुणवान बना सकती है। मान लीजिए किसी वृक्ष का अंकुर अभी छोटा है वह फल-फूल नहीं देता, उस अंकुर से लाभ तो फल-फूल आने पर होगा लेकिन फल-फूल आदि की समस्त शक्तियाँ उस अंकुर में उस समय भी अव्यक्त रूप में मौजूद रहती है। अंकुर अगर जल जाये तो फल-फूल आने की कोई प्रक्रिया नहीं होती।

इसी प्रकार बालक में मनुष्य होने की तमाम शक्तियाँ छिपी हुई है। जो योग्य दिशा में उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तियाँ खिल उठती है। छोटे बच्चों में जितनी जल्दी संस्कार डाले जा सकते है, बड़ों में नहीं। बच्चों को संस्कार सम्पन्न बनाने का उत्तरदायित्व शिक्षक, पिता और विशेषकर माता पर है। माता के सहयोग के बिना शिक्षक भी अपने प्रयत्न पर पूरी तरह सफल नहीं हो सकता। प्रत्येक घर पाठशाला का पूरक है और पाठशाला घर की पूर्ति करे तभी दोनों मिलकर बालकों के सुधार का महत्वपूर्ण कार्य कर सकेगें।

माता-पिता संतान को जन्म देकर छुटकारा नहीं पा सकते। शिक्षक को सुपुर्द करने से उनका कार्य पूरा नहीं होता। उन्हें बालक के जीवन निर्माण के लिए स्वयं अपने जीवन को आदर्शमय बनाना चाहिए। संस्कार सुधार की महत्वपूर्ण जिम्मेवारी माता-पिता पर है। अच्छी और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करने लिए पहले माता-पिता को अच्छा और सदाचारी बनना चाहिए। बबूल के पेड़ पर आम नहीं लगता। हनुमान के समान वीर पुत्र को जन्म देने के लिए अंजना और पवनकुमार दोनों के आपसी मनमुटाव के कारण बारह वर्ष तक अलग रहे लेकिन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रहे।

आजकल पुत्र को जन्म देने की लालसा की तो पार ही नहीं है, पर उसमें उत्तम संस्कार डालने को शायद ही किसी का ध्यान जाता है। बालक में जो देखने की शक्ति है, उसे रोक देना माता-पिता का धर्म नहीं। इसके विपरीत उसके नेत्र में अगर कोई विकार है तो उसे दूर करना उसका कर्त्तव्य है। यह बाह्य चर्म चक्षु की बात है, चर्म-चक्षु तो बालक के उत्पन्न होने के पश्चात कुछ समय में अपने आप ही खुल जाते हैं, पर हृदय के चक्षु इस तरह नहीं खुलते। संस्कार के रूप में मातृ-शक्ति का सदुपयोग संतान को विवेकवान बना सकता है। नारी की मातृत्व शक्ति की सार्थकता इसी में है कि वह चारित्रवान व सद्‌गुण सम्पन्न, प्रतिभावान, संतति का विकास करते हुए विश्व का नवनिर्माण करें।



वर्तमान युग में विवाहित नारी के द्वारा पारिवारिक दबाव के द्वारा भ्रूण की हत्या करवाना मातृत्व पर कलंक है। नारी को माँ, देवी, पूजनीय बतलाने वाले ऊँचे खानदानों की बहुए क्यों स्वच्छन्द रहकर अपने नारीत्व के गौरव की गरिमा कायम नहीं रख पाती। आर्थिक, पारिवारिक और अन्य कारणों के कारण स्वेच्छा से अविवाहित रहने की प्रवृत्ति क्यों बढ़ती जा रही है? ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में स्त्रियाँ अधिक अविवाहित पायी जाती है, जिसका मूल कारण सामाजिक चेतना और पारिवारिक दबाव ही है। सर्वज्ञात और सर्वमान तथ्य है कि स्त्री योनि के बिना संतानोत्पत्ति असम्भव है। (Test tube baby के अलावा) मातृत्व स्त्री की सार्थकता है या बेड़िया यह चिन्तन का विषय है। जननी हुए बिना वह सम्पूर्ण स्त्री नहीं बन सकती। माँ नहीं बनेगी तो वंश परम्परा समाप्त हो जायेगी। वंश परम्परा को अटूट रखने के लिए पुत्र उत्तराधिकारी होना जरूरी है। इसीलिए महावीर, बुद्ध, महात्मा गाँधी के वतन में कन्या भ्रूण हत्या की क्रूर कहानी हर दिन की नादानी हो गई है। माता यदि सजग बने तो यह मनमानी मिट जायेगी।

नारी और पुरुष का संबन्ध अनादिकाल से और सृष्टि के आरम्भ से ही रहा है। नारी की धर्मनिष्ठा से यह आरम्भ होता है, फूलता-फलता है। इसका अपना इतिहास है। नारी की स्नेहपूर्ण गोद में ही सृष्टि का सृजन और विकास हुआ है। धर्मनिष्ठ रहकर नारी अपने विभिन्न रूपों में सही उतरती है। तभी इस धरती पर उसके माँ, बहन, बेटी, पत्नी के रूप में सार्थक बनते है। नारी के स्नेह, त्याग, तप और सेवा के गुणों से वह सदा कल्याणकारी रही है।

नारी की भक्ति में ही, सर्पों के पुष्पाहार बनाये है।
नारी की शक्ति से ही, जहर अमृत बन पाये है।
नारी ने ही जौहर किये, देश हित लाल चढ़ाए हैं।
पथ से भटके राही को, नारी ने सद्‌मार्ग दिखाये है।

(समाप्त)

# यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी

**दक्षिण भारतीय परम्परा–** दिगंबर ग्रन्थ में मयूरवाहना महामानसी चतुर्भुजा है और उसकी ऊपरी भुजाओं में वर्छी (डार्ट) एवं चक्र और निचली में अभय एवं कटक मुद्राएं वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मकरवाहना यक्षी के करों में खड्ग, खेटक, शक्ति एवं पाश के प्रदर्शन का निर्देश है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मयूरवाहना यक्षी को फल, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा से युक्त निरूपित किया गया है।[1]

**मूर्ति परम्परा–** यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ एवं बारभुजी गुफा के यक्षी समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में शान्तिनाथ के साथ 'श्रीयादेवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी का वाहन महिष है और उसके हाथों में खड्ग, चक्र, खेटक एवं परशु प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण श्वेतांबर परम्परा की छठी महाविद्या नरदत्ता से प्रभावित है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी द्विभुजा है और ध्यानमुद्रा में पद्म पर विराजमान है। यक्षी के दोनों हाथों में सनाल पद्म प्रदर्शित हैं। शीर्षभाग में देवी का अभिषेक करती हुई दो गज आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं।[4] यक्षी का निरूपण पूर्णतः अभिषेकलक्ष्मी से प्रभावित है।

शान्तिनाथ की मूर्तियों में ल. आठवीं शती ई. में यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों की जिन-संयुक्त

1. रामचन्द्रन, टी.एन., पू.नि., पृष्ठ 206
2. जि. इ. दे., पृष्ठ 103, 106
3. महाविद्या नरदत्ता का वाहन महिष है और उसके मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक हैं।
4. मित्रा, देवला, पू. नि., पृ. 132



मूर्तियों में यक्षी के रूप में सर्वदा अम्बिका निरूपित है। पर देवगढ़, ग्यारसपुर एवं खजुराहों जैसे दिगंबर स्थलों की मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाली यक्षी आमूर्तित है।[1] मालादेवी मन्दिर की मूर्ति में स्वतन्त्र रूपवाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में अभयाक्ष, चक्राकार समाल पद्म, पद्म-पुस्तक एवं जलपात्र से युक्त है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियों में सामान्य लक्षणोंवाली द्विभुजा यक्षी का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में तथा बायां कार्मुक धारण किये हुए या जानु पर स्थित है।

**विश्लेषण–** उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि शिल्प में यक्षी का पारम्परिक स्वरूप में अंकन नहीं किया गया। स्वतन्त्र लक्षणों वाली यक्षी के निरूपण का प्रयास भी केवल दिगंबर स्थलों की ही कुछ जिन-संयुक्त मूर्तियों में दृष्टिगत होता है। ऐसी मूर्तियां देवगढ़, ग्यारसपुर एवं खजुराहों से मिली हैं। स्वतंत्र लक्षणों वाली चतुर्भुजा यक्षी के दो हाथों में दो पद्म, या एक में पद्म और दूसरे में पुस्तक प्रदर्शित हैं। दिगंबर स्थलों पर यक्षी के करों में पद्म एवं पुस्तक का प्रदर्शन श्वेताम्बर प्रभाव है।

### (17) गन्धर्व यक्ष

**शास्त्रीय परम्परा–** गन्धर्व जिन कुंथुनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में गन्धर्व का वाहन हंस और दिगंबर परम्परा में पक्षी (या शुक) है।

**श्वेताम्बर परम्परा-निर्वाणकलिका** में चतुर्भुज गन्धर्व का वाहन हंस है और दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं पाश और बायें में मातुलिंग एवं अंकुश हैं।[2] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं।[3] आचारदिनकर

1. मथुरा एवं इलाहाबाद संग्रहालयों तथा देवगढ़ (मन्दिर 8) की तीन मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है।
2. गन्धर्वयक्षं श्यामवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं वरदपाशान्वितदक्षिणभुजं मातुलिंगाकुशाधिष्ठितवामभुजं चेति। निर्वाणकलिका 18.17
3. त्रि. श. पु. च. 6.1.116-17, पद्मानन्दमहाकाव्य, परिशिष्ट-कुन्थुनाथ 18-19, मन्त्राधिराजकल्प 3.41

में यक्ष का वाहन सितपत्र है।[1] देवतामूर्तिप्रकरण में पाश के स्थान पर नागपाश एवं वाहन के रूप में सिंह का उल्लेख हैं।[2]

**दिगम्बर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह** के अनुसार चतुर्भुज गन्धर्व पक्षियान पर आरूढ़ है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[3] प्रतिष्ठासारोद्धार में पक्षियान पर आरूढ़ गन्धर्व के करों में सर्प, पाश, बाण और धनुष वर्णित हैं।[4] अपराजितपृच्छा में वाहन शुक है और हाथों के आयुध पद्म, अभयमुद्रा, फल एवं वरदमुद्रा हैं।[5]

जैन गन्धर्व की मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताएं जैनों की मौलिक कल्पना हैं।[6]

**दक्षिण भारतीय परम्परा–** दिगंबर ग्रन्थ में मृग पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के दो हाथों में सर्प और शेष में शर (या शूल) एवं चाप प्रदर्शित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में रथ पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में शर, चाप, पाश एवं पाश का वर्णन है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में पक्षियान पर अवस्थित यक्ष के हाथों में शर, चाप, पाश एवं पाश हैं।[7] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेतांबर परम्परा के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।[8]

1. आचारदिनकर 33, पृष्ठ 175
2. कुन्धनाथस्य ग्रन्थ स्थः श्यामवर्णभाक्।
   वरदं नागपाशं चांकुशं वे बीजपूरकम्।। देवतामूर्तिप्रकरण 7.48
3. कुंथुनाथ जिनेन्द्रस्य यक्षी गन्धर्व संज्ञकः।
   पक्षियान समारढ़ः श्यामवर्णः चतुर्भुजः।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.54
4. सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोद्यः करद्वयात्तेषुधनुः सुनीलः।
   गन्धर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतुश्रितपक्षियानः।।प्रतिष्ठासारोद्धार 3.145
   ऊर्द्धद्विहस्तोद्धृतनागपाशमधोद्विहस्तस्थितचापबाणम्। प्रतिष्ठातिलकम् 7.17,पृ.336
5. पद्मामयफलवरो गन्धर्वः स्याच्छुकासनः। अपराजितपृच्छा 221.52
6. जैन, शशिकान्त, सम कामन एलिमेन्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पंन्थिआन्स-1-यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज, जैन एष्टि., खं. 18, अं. 1, पृ. 21
7. रामचन्द्रन, टी. एन., पू. नि., पृ. 206
8. दक्षिण भारत के ग्रन्थों में सर्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है।



गन्धर्व यक्ष की एक भी स्वतंत्र मूर्ति नहीं मिली है। कुंथुनाथ की दो मूर्तियों में भी पारम्परिक यक्ष के स्थान पर सर्वानुभूति निरूपित है। ये मूर्तियां क्रमशः राजपूताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही की देवकुलिका 35 में हैं।

## (17) बला (या जया) यक्षी

**शास्त्रीय परम्परा–** बला (या जया) जिन कुंथुनाथ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुजा बला[1] मयूरवाहना और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा जया शूकरवाहना है।

**श्वेतांबर परम्परा-निर्वाणकलिका** में मयूरवाहना वला के दाहिने हाथों में बीजपूरक एवं शूल और बायें में मुषुण्डि (या मुषंढी)[2] एवं पद्म का वर्णन है।[3] आचारदिनकर एवं देवतामूर्तिप्रकरण में शूल के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।[4] आचार दिनकर में दोनों वाम करों में मुषुण्डि के प्रदर्शन का निर्देश है। मन्त्राधिराजकल्प में मुषुण्डि केस्थान पर दो करों में पद्म का उल्लेख हैं।[5]

**दिगंबर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह** में शूकरवाहना जया के हाथों में शंख, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[6] अपराजितपृच्छा में

1. श्वेताम्बर परम्परा में यक्षी का अच्युता एवं गांधारिणी नामों से भी उल्लेख हुआ है।
2. मुषुण्ढी स्याद् दारुमयी वृत्तायः कीलसंचिता-इति हेमकोशे-निर्वाणकलिका, पृ. 35। अर्थात् मुषुण्ढी काष्ठ निर्मित है जिसमें लोहे की कीलें लगी होती हैं।
3. बलां देवी गौरवर्णा मयूरवाहनां चतुर्भुजां बीजपूरकशूलान्वितक्षिणभुजा मुषुण्ढिपद्मान्वितवामभुजा चेति। निर्वाणकलिका 18.17, द्रष्टव्य त्रि. श. पु. च 7.1.118-19, पद्मानन्दमहाकाव्य-परिशिष्ट-कुन्थुनाथ 19-20
4. शिखिगा सुचतुर्भुजाऽतिपीता फलपूरं दधतीत्रिशूलयुक्तम्।
   करयोरपसव्ययोश्च सव्ये करयुग्मे तु भृशुण्डिभृद्बलाऽव्यात्।। आचारदिनकर 34, पृष्ठ 177
   गौरवर्णा मयूरस्था बीजपूरत्रिशूलने।
   (पद्मभुषंधिका) चैव स्याद् बला नाम यक्षिणी।। देवतामूर्तिप्रकरण 7. 49
5. गान्धारिणी शिखिगतिः कील बीजपूरशूलान्वितोत्पलयुग्-द्विकरेन्दुगौरा। मन्त्राधिराजकल्प 3.61
6. जयदेवी सुवर्णाभा कृष्णशूकरवाहना।
   संखासिचक्रहस्तासौ वरदाधर्मवत्सला।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.55
   द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार 3.171, प्रतिष्ठातिलकम् 7.17, पृ. 345

जया को षड्भुजा बताया गया है और उसके हाथों में वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश हैं।[1]

बला के साथ मयूरवाहन एवं शूल का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी या जैन महाविद्या प्रज्ञप्ति का प्रभाव है। जया के निरूपण में शूकरवाहन एवं हाथों में शंख, खड्ग और चक्र का प्रदर्शन हिन्दू वाराही या बौद्ध मारीची से प्रभावित हो सकता है।[2]

**दक्षिण भारतीय परम्परा–** दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। यक्षी के दो ऊपरी हाथों चक्र और शेष में अभयमुद्रा एवं खड्ग का उल्लेख है। आयुधों के सन्दर्भ में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसके हाथों में वरदमुद्रा एवं नीलोत्पल वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में कृष्ण शूकर पर आरूढ़ चतुर्भुजा यक्षी के करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान ही शंख, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा का उल्लेख हैं।[3]

**मूर्ति-परम्परा–** यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिला हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर 12,862 ई.) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में कुंथुनाथ के साथ चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[4] यक्षी के तीन करों में चक्र (छल्ला) पद्म एवं नरमुण्ड प्रदर्शित हैं और एक कर जानु पर स्थित है। यक्षी का वाहन नर है जो देवी के समीप भूमि पर लेटा है। ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर परम्परा की 8वीं महाविद्या महाकाली को नरवाहना बताया गया है। पर यक्षी के आयुध महाविद्या महाकाली से पूर्णतः भिन्न हैं। अतः नरवाहन और करों में नरमुण्ड तथा चक्र के प्रदर्शन के आधार पर हिन्दू महाकाली या चामुण्डा का प्रभाव स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति में कुंथु की दशभुजा

1. वज्रचक्रे पाशांकुशी फलं च वरदं जया।
   कनकाभा षड्भुजा च कृष्णशूकरसंस्थिता।। अपराजितपृच्छा 221.31
2. भट्टाचार्य, बी. सी. पू. नि., पृष्ठ 138
3. रामचन्द्रन, टी. एन., पू. नि., पृष्ठ 206
4. जि. ह. दे., पृष्ठ 103
5. राव, टी.ए. गोपीनाथ, पू. नि., पृष्ठ 358,386



यक्षी महिषवाहना है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, दण्ड, अंकुश, चक्र एवं अक्षमाला और वाम में तीन कांटों वाला आयुध चक्र, शंख, पद्म एवं कलश प्रदर्शित है।[1] राजपुताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही की कुंथुनाथ की मूर्तियों में यक्षी अम्बिका हैं।

## (18) यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) यक्ष

**शास्त्रीय परम्परा–** यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) जिन अरनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में षण्मुख, द्वादशभुज एवं त्रिनेत्र यक्षेन्द्र का वाहन शंख बताया गया है।

**श्वेताम्बर परम्परा-निर्वाणकलिका** में शंख पर आरुढ़ यक्षेन्द्र के दक्षिण करों में मातुर्लिंग, बाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा और बाम में नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अंकुश, अक्षसूत्र का वर्णन हैं।[2] पद्मानन्दमहाकाव्य में वाम करों में केवल पाँच ही आयुधों के उल्लेख हैं जो चक्र, धनुष, शूल, अंकुश एवं अक्षसूत्र हैं।[3] मन्त्राधिराजकल्प में यक्ष को वृषभारुढ़ कहा गया है और उसके एक दाहिने हाथ में पाश के स्थान पर शूल का उल्लेख हैं।[4] आचारदिनकर में यक्ष को वृषभारूढ़ करा गया है और उसके एक दाहिने हाथ में पाश के स्थान पर शूल का उल्लेख है।[5] आचारदिनकर में खेटक के स्थान पर स्फर मिलता है।[6] देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षेन्द्र का वाहन शेष है और उसके एक हाथ में बाण के स्थान पर कपाल (शिरस्) के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

(क्रमशः)

1. मित्रा, देवला, पू. नि., पृष्ठ 132
2. यक्षेन्द्रयक्षं षण्मुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्ण शंखवाहनं द्वादशभुजं मातु लिंगाबाणखड्गमुद्गर-पाशाभययुक्तक्षिणपाणं नकुल धनुश्चर्मफलकशूरांकुशाक्षसूत्रयुक्तवागपाणिं चेति। निर्वाणकलिका 18.18, द्रष्टव्य, त्रि. श. पु. च. 6.5.97-98
3. पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-अरनाथ 17-18
4. यक्षोऽसितो वृ,गतिः शरमातुलिंग शूलाभयासिकलमुद्गरपाणिषट्कः शूलाकंकुशस्त्रगहिवैरिधनूंषि विभ्रद् वामेषु खेटकयुतानि हितानि दद्यात्। मन्त्राधिराजकल्प 3.42
5. आचारदिनकर 34, पृष्ठ 175
6. देवतामूर्तिप्रकरण 7.50-51

# भांडासर जैन मन्दिर

ललित कुमार नाहटा

बीकानेर नगर के सबसे विशाल, सर्वोच्च शिखर वाले, भव्य एवं कलात्मक तीन मंजिले श्री सुमतिनाथ जैन मन्दिर जो भांडासर मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है को प्रतिष्ठा क्रम से द्वितीय प्राचीनतम मंदिर माना जाता है। प्रथम मंदिर चौथे दादागुरु श्री चन्द्रसूरि द्वारा वि. सं. 1561 में प्रतिष्ठित परमात्मा ऋषभदेवजी का 'श्री चिन्तामणि जैन मंदिर' हैं। किंवदंती है कि इस मंदिर का निर्माण कार्य बीकानेर राज्य स्थापना के पूर्व ही लगभग वि.सं. 1525 में तत्कालीन जांगलू नामक प्रदेश में सेठ भांडाशाह ने प्रारम्भ किया था। सेठ श्री भांडाशाह का आकस्मिक देहावसान हो जाने के कारण प्रतिष्ठा में विलम्ब हुआ व सात मंजिले मंदिर को तीन मंजिले का ही बनाकर प्रतिष्ठा करवायी गयी जो 46 वर्षों बाद आसोज शुक्ल 2 वि. सं. 1571 में प्रतिष्ठि हुआ।

**मंदिर निर्माण सम्बन्धित शिलालेख :-**

संवत् 1571 वर्षों आसोज सुदि 2 खौ,
राजाधिराज लूणकरणजी विजय राज्ये
शाह भांडा, प्रासाद त्रैलोक्य दीपक
करावितं, सूत्र गोदा कारित।

**निर्माण कर्ता शाहभांडा का परिचय :-** महोपाध्याय विनयसागरजी द्वारा लिखित नाकोड़ा तीर्थ के हिसाब से प्राप्त जानकारी के अनुसार खरतरगच्छीय आचार्य जिनकीर्ति रतनसूरिजी (जिन्होंने नाकोड़ा नगर के सूखे तालाब के तल से पार्श्वनाथ की यह मूर्ति प्रकट की तथा उसे एवं भैरवदेव को वर्तमान स्थान पर स्थापित किया।) इनके भाई के पुत्र का नाम मालाशाह था। मालाशाह के चार पुत्र हुए। सांडाशाह, भांडाशाह, तुण्डाशाह और सूंडाशाह। इनका गौत्र शंखवाल।



**मंदिर निर्माण हेतु स्थान का चयन :-** सेठ भांडाशाह ने उस समय नगर के चारों ओर मीलों लम्बे क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान का चयन कर उस पर इस विशाल मंदिर का निर्माण करवाया था। समतल भूमि से मंदिर के शिखर की ऊँचाई 108 फिट व अन्दर के फर्श से 80 फिट ऊँचा है। दीवारों की ऊँचाई 8-10 फिट है। 10-15 मील दूर से मंदिर का शिखर दिखाई देता है। बीकानेर के सबसे ऊँचे भवन/मंदिर होने का गौरव इसे प्राप्त है व आज भी यह अपने मूल स्वरूप में है। इसके तीसरी मंजिल से पूरे बीकानेर शहर का दिग्दर्शन होता है।

**निर्माण सामग्री :-** कहते हैं इसके नींव की गहराई चार हाथियों के ऊँचाई जितनी है। पूरे टेकरी पर चारों तरफ उस समय उपलब्ध रोड़ा (चूने के पत्थर) की तह जमाई हुई है। मंदिर की उमर हजारों साल रहे इसके लिए खरी गाँव, जैसलमेर से ऊट गाड़ो से लाल पत्थर मंगवाया गया एवं इसके निर्माण के लिए सारा पानी नाल नामक गाँव के तालाब से लाया जाता था। जो भांडासार मंदिर के आठ मील दूर था, क्योंकि बीकानेर का पानी खारा था।

शिल्पकार ने भरतमुनि के नाट्य शास्त्र से संबंधित वाद्य-यंत्र धारी व नृत्यरत देवांगनाओं की मूर्तियों को गढ़ने में अपने हृदय और मस्तिष्क की एकाग्रवृत्ति से छेनी और हथौड़ी की सहायता से सजीवता प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। मंदिर के अधिष्ठायक देव भैंरू है। इससे यह प्रामाणित होता है कि मंदिर का सम्बन्ध खरतरगच्छीय परम्परा से है।

**नींव में घी का डाला जाना :-** अपनी दुकान में बैठे घी व्यापारी भांडाशाह जब मुख्य कारीगर गोदा से मंदिर निर्माण की योजना बना रहे थे तब एक मक्खी घी के बर्तन में गिर गयी। भांडाशाह ने उस मक्खी को निकालकर अपनी जूती पर रख दिया वह अंगुलियों में लगा घी भी जूती पर लगा दिया। गोदा ने सोचा यह मक्खीचूस सेठ क्या

सप्त मंजिला मंदिर बनाएगा अतएव गोदा ने कहा सेठजी मंदिर सुदृढ़ व दीर्घायु हो। इस लिए नींव में एक हजार मन घी डालना आवश्यक है।

सेठ ने दूसरे दिन ऊंट व बैलगाड़ी पर उसके कहे अनुसार घी भेज दिया नींव में डलवाना शुरु कर दिया। तब गोदा ने कहा सेठजी यह तो मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। इतना कहकर उसने मक्खी वाली घटना सुनाई व कहा घी आप वापस ले जाये। तब सेठजी ने कहा कि नींव निमित्त आया घी तो नींव में जायेगा। रही बात मक्खी वाली तो इसके पीछे यही कारण था कि घी से सनी मक्खी रास्ते में डालता तो चीटियाँ आती व किसी के पैरों के नीचे आ जाती अतएव हिंसा न हो इस दृष्टि से ऐसा किया व घी व्यर्थ न जाए। आज भी गर्मी के दिनों में मंदिर के फर्श के जोड़ों से घी की चिकनाई रिसती है।

**चित्रकला :-** बीकानेर से सुप्रसिद्ध चित्रकार मुरादबक्स ने वि. सं. 1960 से लगातार कई वर्षों तक काम करके इसे सुसज्जित किया। सभा मंडप के गुंबज में सुजानगढ़ का मंदिर, पाटलीपुत्र के राजा नंद से समय स्थुलिभद्र स्वामी दीक्षा, संभूतिविजयजी की चातुर्मासार्थ आज्ञा वितरागादि भरतबाहुबलि युद्ध, ऋषभदेव के सौ पुत्रों के प्रतिबोध, दादाबाड़ी, धन्नाशाली भद्र चरित्र के तीन चित्र विजयसेठ, विजयासेठानी के दो चित्र, ईलाची, सुदर्शन सेठ के चरित्र के दो चित्र तथा समवसरण इस प्रकार के सोलह चित्र हैं। इसके नीचे कार्निस पर बीकानेर विज्ञप्ति पत्र का सम्पूर्ण चित्र है। इनके ऊपर गुंबज के प्रथम आवर्त में नेमिनाथ भगवान की बारात के आठ बड़े चित्र है। समुद्रविजयजी, बारात, उग्रसेन राजा महल, राजुल सहसाम्रवन, प्रभु का गिरनार गमन, पशुओं का बाड़ा, रथ फिराना, कृष्ण बलभद्र इत्यादि। गुंबज के आवर्त में दादासाहब के जीवन चरित्र से सम्बन्धित सोलह चित्र है जिनमें जिनचन्दसूरिजी का अकबर मिलन, आमावस की पूनम, पंचनदी साधन तथा जिनचन्द्रसूरिजी के अवशिष्ट जीवन संबंधित चित्र है। गुंबज के सबसे ऊंचे भाग के सोलह चित्र तीर्थंकरों के जीवन चरित्र



से संबंधित है। इनमें महावीर स्वामी का चंडकौशिक उपसर्ग, सम्बल-कम्बल, चंदनबाला, पार्श्वनाथ, कमठउपसर्ग, नेमिनाथ शंखवादन, चौदह राजलोक, मेरूपर्वत, केवल्यज्ञान, व निर्माण कल्याणादि के भाव अंकित है।

मंदिर के प्रवेशद्वार पर प्रभु का जन्माभिषेक चित्रित है। बाहरी गुम्बज पर जैनाचार्यों के चित्र है। जैसे गौतमस्वामी की अष्टापद यात्रा, अमलक्रीड़ा नरकयातना, महावीर उपसर्ग, पार्श्वनाथ कमठोपसर्ग, जम्बूचरित्र, ईलापुत्र, वंकचूल चरित्र, मधुविदु, रोहिणियांचोर, समवसरण, ग्वालिये का उपसर्ग, श्रीपालचरित्र के दस चित्र, चंपापुरी पावापुरी, सम्मेतशिखर तीर्थ, जम्बूवृक्ष एवं इन्द्र-इन्द्राणी आदि के अनेकों चित्र है। चित्रों में स्वर्ण का प्रयोग किया गया है। इस मंदिर को यदी जैन कथा साहित्य सम्बन्धित चित्रों का संग्रहालय कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

'भारतीय पुरातत्त्व विभाग' ने सन् 1951 में इसे राष्ट्रीय महत्त्व का संरक्षित स्मारक घोषित किया। इसका स्वामित्व व प्रबन्धन 'श्री चिन्ता मणि जैन मंदिर प्रन्यास' के पास है व इसके अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार धाड़ीवाल व अन्य पदाधिकारियों के कुशल नेतृत्व में इसका उचित रख-रखाव हो रहा हैं।

(समाप्त)

# सोने के कंगन

श्री केवल मुनि

भटकते-भटकते वह एक दिन जनशून्य नगर में जा पहुँचा। नगर में उद्यान, मकान, राजमहल सब कुछ था, परन्तु प्राणी एक भी नहीं। उत्सुकतापूर्वक वह राजमहल की सीढ़ियाँ लांघता हुआ पहुँचा तो उसे सातवीं मंजिल पर दो हथिनियाँ सांकल से बँधी दिखाई दी। वह विचार करने लगा–सातवीं मंजिल पर यह हथिनियाँ कैसे चढ़आई। अवश्य ही कोई माया है। इधर-उधर देखा तो उसे गवाक्ष में कफेद और काले अंजन की दो शीशियाँ दिखाई दीं और पास ही एक शलाका। अंजन की शीशियों का यहाँ क्या काम? उसने हथिनियों की आँखें तो उनके पलक सफेद थे। उसने बुद्धि पर जोर दिया। अवश्य ही यह अंजन रहस्यमयी है। सफेद अंजन के कारण ही ये हथिनियाँ हो गई हैं। किसी मायावी ने ही ऐसी माया रची है। काला अंजन लगाकर देखूँ तो सही क्या परिणाम होता है? यह विचार करके उसने काला अंजन उन हथिनियों की आँखों में लगा दिया। तुरंत ही वे दोनों सुन्दर स्त्रियाँ बन गई।

आश्चर्य चकित होकर कुमार ने पूछा–सुन्दरियों! तुम कौन हो? तुम्हारी यह दशा किसने की? यह नगर जनशून्य क्यों है?

सुन्दरियों ने आँखों में आँसू भरकर कहा–भद्र! हमारी पूरी कहानी सुन लो, तुम्हें सब कुछ ज्ञात हो जायेगा।

–गंगानदी के किनारे एक परिव्राजक रहता था। वह ऊपर से तो वेदानुयायी, क्रियावान और देखने में सरल और सदाचारी था। किन्तु वास्तव में था धूर्त, कपटी और क्रूर परिणामी। एक बार हमारे पिता ने उसे भोजन के लिए निमन्त्रित किया। हम दोनों भी गुरु भाव से उसे पंखा झलने लगीं। किन्तु उस दुष्ट के हृदय में तो हमारे रमणीय अंगों को देखकर अनंग समा गया। वह भोजन करना भूलकर हमें ही एकटक देखने लगा। हमारे पिता ने कहा–



महाराज! रुक कैसे गये? भोजन करिये!

किन्तु उसने भोजन न किया और हाथ धोकर उठ खड़ा हुआ। पिताजी से पूछा–महाराज! आपने ऐसी क्या विचित्र बात देखी कि भोजन भी पूरा नहीं किया, खाली पेट ही उठ गये।

उसने उत्तर दिया–बहुत गम्भीर बात है, यजमान! फिर कभी पूछना।

यह कहकर वह तो अपने आश्रम को चल दिया किन्तु हमारे पिता के हृदय में शंका उत्पन्न हो गई। उन्हें चैन कहाँ? वे भी उसके पीछे-पीछे चले गये। पूछने पर तापस ने बताया–बुरा मत पूछो यजमान! तुम्हें जानकर बहुत पीड़ा होगी।

–अवश्य बताइये महात्माजी।

–घोर संकट है!

–आपके होते हुए भी?

–उपाय बहुत कठिन है।

–बताइये भी, अवश्य करूँगा।

इस प्रकार प्रभाव में लेकर परिव्राजक कहने लगा–

–यजमान तुम्हारी दोनों कन्याएं बहुत ही कुलक्षिणी है। उनके कारण शीघ्र ही तुम्हारा सब कुछ नष्ट हो जायेगा?

सर्वनाश की बात सुनकर पिताजी घबड़ा गये, पूछने लगे–उपाय भी बताइये।

–दोनों पुत्रियों को शृंगार, सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके, लकड़ी की पेटी में बन्द करो और गंगा में बहा दो। यही एक उपाय है। सर्वनाश से बचने का।

हमारे पिता ने मूर्खों की तरह उसकी बात मान ली। उसके कपट को न जाना।

परिव्राजक के कहे अनुसार हम दोनों को हमारे पिता ने पेटी में बन्द करके गंग में बहा दिया।

इधर परिव्राजक ने अपने शिष्यों से कहा–

गंगादेवी ने मेरी मंत्र सिद्धि के लिए मुझपर कृपा करके एक पेटी

प्रदान की है। तुम लोग जाकर उसे निकाल लाओ। मार्ग में खोलना मत क्योंकि खुलने से मन्त्रसिद्धि में बाधा पड़ जायेगी। सीधे लाकर मेरे पूजा ग्रह में रख देना।

गुरु की आज्ञानुसार शिष्य गंगा के किनारे-किनारे चार कोस तक चले गये, परन्तु पेटी दिखी ही नहीं। उसका कारण था–इस ग्राम का राजा सुभूम।

सुभूम उस समय गंगा किनारे क्रीड़ा कर रहा था। उसने जो पेटी गंगा में बहती हुई देखी तो अपने सेवकों से निकलवा लिया और पेटी में हमें देखकर विस्मित हुए। उस समय मंत्री ने कहा–

–महाराज! ये कन्याएँ किसी विशेष प्रयोजन से गंगा में बहाई गई है। इसलिए इन्हें उतारकर कोई अन्य स्त्रियाँ पेटी में बन्द करके बहा दी जायें।

किसी दूसरे मनुष्य ने सुझाव दिया–यहाँ गंगा किनारे स्त्रियाँ कहा मिलेगी। मेरी राय में वन में फिरती हुई दो वानरियों को पेटी में बन्द करके बहा दिया जाय।

राजा सुभूम को यह सलाह जँच गई। दो बन्दरियाँ पकड़ी और पेटी में बन्द करके गंगा में छोड़ दी गई।

इसी कारण देर हो गई और शिष्यों को पेटी दिखाई नहीं दी।

शिष्य बड़ी देर तक विचार करते रहे। पेटी तो आई नहीं, और कार्य पूरा किये बिना लौटना उचित नहीं। तब तक उन्हें वह पेटी गंगा में बहती हुई दिखाई दे गई और उन्होंने वह गुरु के मन्त्राराधन मठ में ले जाकर रख दी।

सूर्यास्त के पश्चात् परिव्राजक ने शिष्यों को आज्ञा दि–

–मैं मन्त्राराधन के लिए बैठता हूँ। तुम बाहर से ताला बन्द कर दो। अन्दर के कैसा भी स्वर आये, बहरे बन जाना। कोई आर्त स्वर में करुण विलाप करे, चाहे पुकारे! तुम इतनी दूर चले जाना कि कुछ सुनाई न पड़े। सुनकर भी पास न आना अन्यथा मन्त्रसिद्ध में बाधा पड़ जायेगी।

गुरु मन्त्राराधन मठ में प्रवेश कर गया और आज्ञाकारी शिष्यों ने गुरु-आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। वे बाहर से ताला लगाकर दूर जाकर बैठ गये।



परिव्राजक ने प्रसन्न मन पेटी खोली तो बहुत देर से बन्द चंचल बन्दरियाँ उछलकर बाहर निकली और सामने बैठे परिव्राजक पर टूट पड़ी। उन्होंने उसके हाथ, पैर, आँख, नाक, कान काट खाये। परिव्राजक पीड़ा से ब्याकुल दरवाजे की ओर दौड़ा। किन्तु वहाँ तो बाहर से ताला बन्द था। वह शिष्यों को पुकारने लगा–अरे दौड़ो, दौड़ो बचाओ–ये वानरियाँ मुझे खाये जा रही हैं।

शिष्यों ने सुनकर भी अनसुना कर दिया। गुरु के परम आज्ञाकारी शिष्य थे, पापी गुरु के मूर्ख शिष्य।

बन्दरियाँ दाँतों से काटती रही, नाखूनों से खाल उधेड़ती रही। आखिर परिव्राजक मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। रातभर उन बन्दरियों ने उसे नोचा-खसोटा। तीव्र वेदना से परिव्राजक के प्राण निकल गये। मिथ्या तप और क्रूर परिणामों से मरकर वह राक्षस बना।

अपने कु-अवधिज्ञान से उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लिया और सुभूम राजा तथा इस नगर पर वज्र की भाँति टूट पड़ा। राजा सुभूम को तो उसने मार डाला और नगर उजाड़ दिया। पूर्वजन्म की वासना और कामान्धता के कारण हमें छोड़ दिया। लेकिन हमारी दशा ऐसी है कि न मरी है न जीवित! जब वह राक्षस बाहर जाता है तो सफेद अंजन से हमें हथिनी बना जाता है और वापिस आने पर काला अंजन लगाकर स्त्री अपना सम्पूर्ण वृत्तांत सुनाकर दोनों स्त्रियाँ आँखों में आँसू भरकर कहने लगी–भद्र! इस राक्षस के फन्दे से हमें छुड़ाओं।

सुमित्र को उनकी दशा पर करुणा हो आई। उसने पूछा–सुन्दरियों! राक्षस कहाँ जाता है और कितने दिन में वापिस लौटता है?

कन्याओं ने बताया–वह राक्षस दो-तीन दिन के लिए राक्षस द्वीप जाता है और यहाँ महीने-पन्द्रह दिन रहता है। आज तो वह अवश्य आयेगा और सुबह ही राक्षस द्वीप चला जायेगा। आज रात को तो तुम महल के गर्भगृह में विश्राम करो और हमारे छुड़ाने का उपाय सोचो!

सुन्दरियों की इच्छानुसार सुमित्र ने श्वेत अन्जन के प्रयोग से उन्हें हथिनी बनाया और स्वयं महल के गर्भ-गृह में जाकर भविष्य की योजना बनाने लगा!

संध्या समय राक्षस आया और काले अन्जम के प्रयोग से उन्हें स्त्री बनाकर चारों ओर सूँगने लगा।

–मुझे मानव की गन्ध आ रही है।

–रात दिन मनुष्यों का भक्षण करते-करते तुम्हारे तो सर्वांग में मानव गन्ध ही बस गई है। यहाँ हम दोनों के अलावा और कौन है?--स्त्रियों ने तुनक कर जवाब दिया।

प्रिय की नाराजगी क्रूर से क्रूर प्राणी भी नहीं सह सकता। राक्षस सहम कर चुप हो गया। प्रातः जाते समय जब वह श्वेत अन्जन का प्रयोग करने लगा तो सुन्दरियों ने सानुराग कहा– तुम तो चले जाते हो और हम यहाँ अकेली खड़ी-खड़ी दुःखी होती रहती हैं।

राक्षस प्रसन्न होकर बोला–जल्दी ही लौटूँगा। तुम लोग चिन्ता मत करो।

स्त्रियों को हथिनी बनाकर राक्षस तो राक्षस द्वीप चला गया और सुमित्र गर्भ गृह से निकलकर ऊपर आया। उसने काले अन्जन के प्रयोग से उन्हें पुनः स्त्री बनाया और तीनों वहाँ से चल दिये। सुमित्र ने राजकोष से कुछ रत्न भी मार्ग व्यय के हेतु लिए और अपने मित्र वीरांगद के राज्य की ओर प्रस्थान कर दिया।

चलते-चलते मार्ग में एक मन्त्रसिद्ध पुरुष मिला। सुमित्र ने उन स्त्रियों की कथा सविस्तार उसे बताई। मन्त्र सिद्ध पुरुष ने आश्वासन दिया-

भद्र! तुम कोई चिन्ता मत करो। राक्षस तुम लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ लकेगा।

इधर राक्षस ने राजमहल में वापिस आकर देखा कि न वहाँ हथिनी हैं, न सफेद काली अन्जन की शीशियाँ और राज्य कोष भी रिक्त हो चुका है। कुपित होकर वह इधर-उधर देखने लगा। उसे तीनों के पग-चिन्ह दिखाई दे गये। उनका अनुसरण करता हुआ वह भी मन्त्रसिद्ध पुरुष के पास आ पहुँचा। वहाँ दोनों स्त्रियाँ और सुमित्र बैठे दृष्टिगोचर हुए है। राक्षस क्रोधित होकर भयंकर शब्द और भयंकर चेष्टायें करता हुआ आगे बढ़ने लगा। किन्तु मन्त्र सिद्ध पुरुष ने मन्त्र बल से उसे स्थिर कर दिया।



राक्षस भयभीत हो गया। क्रूर प्राणियों की क्रूरता निर्बलों पर ही चलती है, बलवान के सामने तो वे भीगी बल्ली बन जाते है। राक्षस बोला–हे मन्त्रसिद्ध पुरुष! मुझे छोड़ दो।

–छोडूगा तब, जब तुम इस सुमित्र से वैर छोड़ दो। इसका अहित न करने का वचन दो।

–मैं सुमित्र का कोई अहित न करूँगा। किन्तु मेरे प्राण के समान व्यारी ये दोनों स्त्रियाँ तो मुझे दे दो।

मन्त्रसिद्ध पुरुष उसे धिक्कारते हुए बोला–

धिक्कार है तुझे! इन सुन्दरियों के कारण ही तेरा तपभंग हुआ और इस राक्षस योनि में आ पड़ा। बन्दरियों ने तेरा माँस नोंचा और खाल उधेड़ी फिर भी परस्त्री-गमन नहीं छोड़ता है। अरे दुष्ट! परस्त्री-गमन के पाप से तू नरक में जायेगा। वहाँ के दुःखों पर विचार तो कर! अब तो इस पाप को छोड़।

मन्त्रसिद्ध पुरुष ने उसे अनेक प्रकार से प्रतिबोध दिया। राक्षस ने वैर त्याग किया, सबसे क्षमा माँगी और अपने स्थान को चला गया।

सुमित्र ने मन्त्रसिद्ध पुरुष को धन्यवाद देते हुए कहा–आज आपके कारण ही हम सबके प्राण बचे।

मन्त्रसिद्ध पुरुष ने उत्तर दिया–धन्यवाद तो मुझे देना चाहिए कि मन्त्र विद्या विहीन होते हुए भी तुमने इन स्त्रियों को राक्षस के फन्दे से छुड़ाया। बन्धु! साहस बहुत बड़ी वस्तु है।

अपकारी मन्त्रसिद्ध पुरुष से विदा लेकर वे तीनों चल दिये और मन्त्रशाल नगर में आ पहुँचे। यद्यपि वहाँ सुमित्र का परम मित्र वीरांगद कुमार राज्य करता था। किन्तु वह उससे मिला नहीं और एक अलग घर लेकर दोनों स्त्रियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

सुमित्र के चले जाने के पश्चात् रतिसेना वेश्या की आय तो समाप्त हो गई और व्यय ज्यों का त्यों रहा। मणि ने भी कुछ नहीं दिया। आखिर संचित द्रव्य कब तक चलता? भूखों मरने की नौबत आ गई तो उसने अपनी पुत्री से कहा–

--बेटी! किसी अन्य धनवान के साथ क्रीड़ा कर।

–नहीं! मेरा पति तो सुमित्र है। जीवन में जिसके साथ प्रथम बार क्रीड़ा की वहीं मेरा पति।

–नहीं पुत्री! हम वेश्याएं है और वेश्या का पति मनुष्य नहीं धन होता है। जो भी धन दे उसी के साथ वह रमण करती है। तू भी ऐसा ही कर।

पुत्री कुपित होकर बोली–होता होगा वेश्या का पति पैसा! मैं आग में जल जाऊँगी, भूखी मर जाऊँगी, नदी-कुएँ में डूब मरूँगी किन्तु किसी अन्य व्यक्ति के साथ रमण तो क्या उसे पास भी नहीं आने दूँगी।

माँ समक्ष गई कि पुत्री सुमित्र के अतिरिक्त और किसी को नहीं चाहती। वह ग्राम भर में सुमित्र को खोजती फिरी पर वह नहीं मिला। वृद्धा रतिसेना प्रतिदिन उसे खोजती–यही उसका नियम बन गया।

एक दिन उसे राजमार्ग पर जाता सुमित्र दिखाई दे ही गया। वृद्धा अपने स्वर में मिश्री घोलकर बोली–अरे सुमित्र सेठ! तुम कहाँ चले गये। मैं तो तुम्हें ढूँढ़ती ही रही पर कहीं मिले ही नहीं। कोई अपनो को भी ऐसे छोड़ जाता है कि लौटकर सुधि ही न ले।

वृद्धा कुट्टिनी के वचन सुनकर मन ही मन सुमित्र सोचने लगा कि इसे शिक्षा देनी चाहिए। साधु के साथ सज्जनता और मायावी के साथ कपट-व्यवहार यही नीति है। ऐसा विचार करके वह शहद सने मीठे स्वर में बोला–

–मैं परदेश व्यापार के निमित्त गया था। इसी कारण तुमसे न मिल सका, किन्तु मुझे तुम्हारी स्मृति कभी उतरी नहीं। सदा ही तुम्हें याद करता रहा। अपनी पुत्री को मेरे पास एकांत में भेजना तो उसे उपार्जित धन में से कुछ दे दूँगा।

रतिसेना प्रसन्न मन घर गई और पुत्री को सुमित्र के पास भेज दिया। सुमित्र ने श्वेत अंजनशालाका का प्रयोग करके उसे हथिनी बना दिया और स्वयं अपने घर आकर सुख से सो गया।

बहुत देर तक पुत्री न आई तो वृद्धा उसे ढूँढ़ने चली– क्योंकि लृद्धा गणिका का एक मात्र सहारा उसकी युवा पुत्री ही तो होती है।



एकान्त स्थल पर आकर उसने देखा–नवहाँ सुमित्र है और न उसकी पुत्री वरन् एक हथिनी खड़ी थी।

वृद्धा जोर-जोर से रोने और विलाप करने लगी। उसके रुदन को सुनकर बहुत से लोग एकत्र हो गये और पूछने लगे–क्या हुआ? क्या हुआ?

रोते-रोते रतिसेना ने कहा–

–हुआ क्या? किसी परदेशी ने मेरी पुत्री को एकान्त में बुलाई थी। अब यहाँ न पुत्री है और न वह परदेशी। न जाने वह परदेशी मेरी पुत्री को कहाँ लेकर गायब हो गया।

–परदेशी का क्या भरोसा? जल्दी जाकर राजा से शिकायत कर दे, अन्यथा तेरी पुत्री सदा को गायब हो जायगी–लोगों ने सुझाव दिया।

वृद्धा ने जाकर राजा वीरांगद से पुकार की–

महाराज! दुहाई है! मेरी रक्षा करो। कोई परदेशी मेरी पुत्री को लेकर भाग गया।

वीरांगद ने कहा–स्पष्ट बताओ, क्या हुआ?

वृद्धा ने बताया–महाराज! एक परदेशी ने मेरी पुत्री को एकान्त में बुलाया। बहुत देर हो गई तो मैं उसे खोजने गई किन्तु वहाँ न परदेशी था और न मेरी पुत्री वरन् एक हथिनी खड़ी थी।

राजा वीरांगद विचार करने लगा–ऐसा कौतुक तो सुमित्र ही कर सकता है, कहीं वहीं न हो! वृद्धा से पूछा–तुम्हें वह परदेशी पहली बार कब मिला था।

–जिस दिन आपका राज्याभिषेक हुआ–वृद्धा कुट्टिनी के मुख से सच्ची बात निकल गई।

(क्रमशः)

## JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

### English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   Vol - 1 (satakas 1- 2) Price : Rs. 150.00
   Vol - 2 (satakas 3- 6) 150.00
   Vol - 3 (satakas 7- 8) 150.00
   Vol - 4 (satakas 9- 11) **ISBN** : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   **ISBN** : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00
   **ISBN** : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   **ISBN** : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   **ISBN** : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   **ISBN** : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism **ISBN** : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

### Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) **ISBN** : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00



6. Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat, Price : Rs. 45.00
7. Ganesh Lalwani -- Panchdasi. Price : Rs. 100.00
8. Rajkumari Begani-Yado ke Aine me. Price : Rs. 30.00
9. Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra Price : Rs. 15.00
10. Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm Price : Rs. 24.00
11. Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika Price : Rs. 20.00
12. Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad Price : Rs. 250.00
    **ISBN** : 978-81-922334-8-2
13. Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra Price : Rs. 50.00
14. Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan Price : Rs. 50.00
15. Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal
    **ISBN** : 978-81-922334-9-9 Price : Rs. 50.00
16. Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh Price : Rs.

### Bengali :

1. Ganesh Lalwani-Atimukta, Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita Price : Rs. 20.00
3. Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma. Price : Rs. 15.00
4. Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma Price : Rs. 20.00
5. Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra Price : Rs. 25.00
6. Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita Price : Rs. 20.00
7. Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti Price : Rs. 20.00

### Some Other Publications :

1. Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir Price : Rs. 15.00
2. Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan Price : Rs. 10.00
3. Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma Price : Rs. 100.00
4. Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali) Price : Rs.
5. Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali) Price : Rs. 50.00
6. K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira Price : Rs. 25.00

**इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :**

| | | |
|---|---|---|
| अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका | वार्षिक | 500.00 |
| **ISSN 0021 - 4043** | (आजीवन) | 5000.00 |
| हिन्दी मासिक पत्रिका | वार्षिक | 500.00 |
| **ISSN 2277 - 7865** | (आजीवन) | 5000.00 |
| बंगला मासिक पत्रिका | वार्षिक | 200.00 |
| **ISSN : 0975 - 8550** | (आजीवन) | 2000.00 |